स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक। सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर। भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १८ } गौराब्द ४८७, मास—विष्णु २७, वार—गर्भोदशायी शुक्रवार, ३० चैत्र, सम्वत् २०३०, १३ अप्रेल, १९७३ { संख्या ११

अप्रेल १९७३

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीश्रीश्रुतिगणकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।८७।३५-४१)

श्रुतियोंने कहा—

भवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदास्त उत भवत्पदाम्बुजहृदोऽघभिदंघ्रिजलाः ।
दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥ ३५ ॥

हे देव ! आपके पादपद्मोंको हृदयमें धारण करनेके कारण जिनका पादोदक सर्वपापविनाशन है, ऐसे अहंकारशून्य मुनि लोग भी पृथ्वीमें बहुतसे पुण्यतीर्थ एवं पुण्य-क्षेत्र-समूहकी सेवा किया करते हैं। जिन लोगोंने एकबार मात्र नित्यसुखमय परमात्मा रूपी आपके प्रति मनोनिवेश किया है, वे पुनः पुरुषोंके विवेक, स्थिरता, क्षमा, शान्ति आदि सारहरणकारी गृहकी सेवा नहीं करते ॥ ३५ ॥

सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथोभययुक् ।
व्यवहृतये विकल्प इषितोऽन्धपरम्परया भ्रमयति भारती च उरुवृत्तिभिरुक्थजड़ान् ॥३६॥

हे देव ! यह जगत् सद्वस्तुका कार्य होनेके कारण यदि इसे भी 'सत' कहा जाय, तो यह सिद्धान्त तर्क द्वारा बाधा प्राप्त होता है। क्योंकि सत्य ऐन्द्रजालिक या जादूगरका कार्य इन्द्रजाल विद्याको मिथ्या होते देखा जाता है। इसलिए ऐसे स्थलमें पहले कहे गये सिद्धान्तका व्यभिचार हो रहा है। यदि कहे कि ऐन्द्रजालिक इन्द्रजाल-विद्या का निमित्त कारण है; निमित्त कारणस्थलमें पहले कहे गये सिद्धान्तका व्यभिचार हो सकता है, किन्तु उपादान-कारण-स्थलमें ऐसा व्यभिचार नहीं होता। इसलिए सत्पदार्थ जगतका उपादान-कारण होनेके कारण उस स्थलमें सिद्धान्तकी कोई हानि नहीं हो रही है। ऐसा होने पर यही कहना पड़ेगा कि उपादान-कारण-स्थलमें भी उक्त सिद्धान्तका व्यभिचार देखा जाता है। जिस प्रकार मरीचिका से मिथ्या जलकी प्रतीति होती है। यदि कहे कि मरीचिकासे उत्पन्न जल-दर्शनमें अज्ञान ही कारण होनेके कारण वहाँ मिथ्यापन सिद्ध होता है। ऐसा होनेपर उत्तर यही है कि यहाँ भी अज्ञान द्वारा उत्पन्न किया गया सत्पदार्थ ही जगतका कारण होनेके कारण जगतका मिथ्यापन ही सिद्ध होता है। यदि कहे कि मरीचिका-जल-स्थलमें कार्य-कारणका सारूप्य (समरूपता) देखा जाता है, इसलिए वहाँ कार्य-कारण भाव स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु विविध विचित्रताओंसे युक्त यह जगत् सद्वस्तु से अत्यन्त विरूपता या विभिन्नता युक्त होनेके कारण दोनोंका कार्य-कारण भाव स्वीकार किया नहीं जा सकता। सुवर्णसे उत्पन्न कुण्डल, मृत्तिका से उत्पन्न घड़ा आदि स्थलमें सर्वत्र उपादान कारण एवं कार्यकी समरूपता देखी जाती है, तो वहाँ यही कहना होगा कि जगतकी विचित्रता केवल अन्धपरम्परा द्वारा कल्पना की गई है, वस्तुतः या यथार्थमें कोई विचित्रता नहीं है। यदि कहा जाय कि ऐसे कल्पना किये गये विषयमें पण्डितों की भी आसक्ति क्यों देखी जाती है? तो उसका उत्तर यही है कि आपकी वेदरूपा वाणी गौण-लक्षणा आदि विविध वाक्य-वृत्तियोंद्वारा कर्ममें श्रद्धायुक्त मन्द बुद्धिवाले व्यक्तियोंको मोहित किया करती है ॥ ३६ ॥

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधनादनुमितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे ।
अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथैर्वितथमनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः ॥ ३७ ॥

जिस कारणसे यह जगत् सृष्टिके पहले वर्त्तमान नहीं था, प्रलयके पश्चात् भी नहीं रहेगा। इसलिए मध्यकालमें अर्थात् वर्त्तमान समयमें भी केवल-भावाश्रित आपमें जो मिथ्या रूपसे ही प्रतीत हो रहा है, उसका अनुमान किया जा सकता है। अतएव घटादि विकारी वस्तुएँ जिस प्रकार केवल नाममात्रमें ही मृत्तिकादि कारणसे भिन्न

हैं, किन्तु यथार्थमें नहीं हैं। उसी प्रकार इन आकाशादि कार्यवस्तुओंकी भी केवल नाममात्रमें ही पृथक् सत्ता जान पड़ती है, किन्तु यथार्थमें वे ब्रह्मको छोड़कर पृथक् सत्ताविशिष्ट नहीं हैं। जो व्यक्ति अज्ञ हैं, केवलमात्र वे ही मनद्वारा कल्पित इन मिथ्यावस्तुओंको सत्य रूपसे समझते हैं ॥ ३७ ॥

स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन् भजति सरूपतां तदनु मृत्युमपेतभगः ।
त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो महसि महीयसेऽष्टगुणितोऽपरिमेयभगः ॥३८॥

यह जीव मायाके कारण अविद्याका आलिंगन करने कारण देहेन्द्रियादि गुणजात पदार्थोंमें आत्माभिमान युक्त होकर वर्त्तमान है एवं उसके आनन्दादि गुणसमूह आच्छादित होकर संसार-दशा उसकी हुआ करती है। परन्तु नित्य ऐश्वर्यसम्पन्न आप साँपके द्वारा अपनी काँचुली त्याग करनेकी तरह अविद्याकी अपेक्षा कर अपरिमित ऐश्वर्यके अधिकारी रूपसे अणिमादि आठ प्रकारकी विभूतियुक्त परम ऐश्वर्यपदमें विराजमान होकर वर्त्तमान हैं ॥ ३८ ॥

यदि न समुद्धरन्ति यतयो हृदिकामजटा दुरधिगमोऽसतां हृदिगतोऽस्मृतकण्ठमणिः ।
असुतृपां योगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगवन्ननपगतान्तकादनधिरूढपदाद्भवतः ॥ ३९ ॥

हे भगवन् ! यदि कोई व्यक्ति अपने कण्ठमें स्थित मणिकी बात भूल जाय, तो ऐसा होने पर उसे वह अप्राप्य जान पडता है, उसी प्रकार व्यक्तियोंके हृदयमें वर्त्तमान कामसमूह का मूलोत्पाटन न होने पर आप उनके निकट दुष्प्राप्य हुआ करते हैं, (जन्म-मरण रूप संसार-धर्म) दूर न होनेके कारण लोकाराधन-धन-उपार्जन आदि क्लेशोंके कारण इस कालमें या वर्त्तमान समयमें भोगवैभवादिका नाश होनेका भयरूप दुःख एवं आपके स्वरूपको न जाननेके कारण अपने धर्मका अतिक्रम करनेके कारण आपके नियन्त्रित दण्ड नरकप्राप्ति द्वारा परकालमें भी (मृत्युके पश्चात् भी) दुःख ही प्राप्त किया करते हैं ॥ ३९ ॥

त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयोर्गुणविगुणान्वयास्तर्हि देहभृताञ्च गिरः ।
अनुयुगमन्वहं सगुणगीतपरम्परया श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ॥ ४० ॥

हे षड्ऐश्वर्यशाली प्रभो ! आपमें जिनका चित्त मग्न हो गया है, ऐसे व्यक्ति लोग कर्मफलदाता आपके निकटसे उत्पन्न अर्थात् आपके द्वारा रचित पुण्यापुण्यकर्मके फल रूपसे उत्पन्न गुण-दोषोंके सम्बन्धमें अनुसंधान नहीं करते एवं उनका देहाभिमान दूर हो जानेके कारण देहाभिमानी व्यक्तियोंद्वारा कहे गये विधिनिषेधयुक्त सभी वाक्यों

का भी आदर नहीं करते। क्योंकि युग-युगमें सर्वदा आपके कथा-गानकारी व्यक्तियोंके निकट आपके गुणसूचक कथाओं का श्रवण कर उन्हें धारण करते हुए वे अपवर्ग गति आपका ही आश्रय प्राप्त किया करते हैं ॥४०॥

द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः ।
ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतयस्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥४१॥

हे भगवन्! आपके प्रत्येक लोमकूपमें उत्तरोत्तर या क्रमशः दस गुणविशिष्ट सात आवरणयुक्त ब्रह्माण्डसमूह आकाशमें धूलिकणोंकी तरह एकसाथ कालचक्रके सहित परिभ्रमण कर रहे हैं। आपके अनन्तत्वके कारण ब्रह्मा आदि लोकपालनकारी व्यक्ति भी आपकी सीमाको जान नहीं पाये, आप भी स्वयं अपनी सीमा जान नहीं पाते। अतएव आपमें जिनका लय होता है, ऐसी श्रुतियाँ केवलमात्र 'अस्थूल अनणु' आदि निषेधपरक शब्दों द्वारा तात्पर्य वृत्तिकी सहायतासे ही आपका निर्देश किया करती हैं। परन्तु 'यह ऐसा है' — ऐसे वाक्योंद्वारा साक्षात् रूपसे आपका प्रतिपादन कर नहीं पातीं ॥४१॥

॥ इति श्रीश्रीश्रुतिगणकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥
॥ इति श्रीश्रीश्रुतिगणकृत श्रीकृष्णस्तोत्र सम्पूर्ण ॥

पतित-बन्धु भगवान्

पतितपावन जानि सरन आयो ।
उदधि संसार, सुभ नाम नौका तरन, अटल स्थान निजु निगम गायो ॥
व्याध अरु गीध, गनिका, अजामिल द्विज, चरन गौतम-तिया परसि पायो ।
अन्त औसर अरध-नाम उच्चार करि, सुभ्रत गज ग्राह तैं तुम छुड़ायो ॥
अबल प्रह्लाद बलि दैत्य सुखहि भजत, दास ध्रुव चरन चित सीस नायो ।
पांडु सुत विपति मोचन महादास लखि, द्रौपदी-चीर, नाना बढ़ायो ॥
भक्त-वत्सल, कृपा-नाथ, असरन-सरन, भार भूतल हरन जस सुहायो ।
सूर प्रभु-चरन, चित चेति चेतन करत, ब्रह्म-सिव-सेस-सुक-सनक ध्यायो ॥

श्रीश्रीलप्रभुपाद और माननीय श्रीचेट्टियार

[१४ जनवरी, सन् १९३२ में श्रीमद्रास गौड़ीय मठमें जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' एवं मद्रासके उच्चतम न्यायालय के विचारपति माननीय श्रीसुन्दरम् चेट्टियार के बीच हुए कथोपकथनका सार-मर्म]

माननीय विचारपति— अप्राकृत (Transcendent) किसे कहते हैं ?

श्रीलप्रभुपाद—जो प्रपञ्चातीत है, वही अप्राकृत है। वही अप्राकृत वस्तु चार प्रकारके व्यक्तित्वके साथ नित्य वर्त्तमान है। वह नित्य, शुद्ध, पूर्ण एवं मुक्त है। प्राकृत विशेषमें जो सभी नाम-रूप-गुणादि हैं, उनका नित्यत्व नहीं है। वे अनित्य, क्षणभंगुर, अशुद्ध, खण्डित और बद्ध आपेक्षिकतायुक्त हैं। किन्तु अप्राकृत नामकी उपासना नित्य है। वह सब प्रकारके मायिक बन्धनकी हेयतासे परिमुक्त है। अप्राकृत श्रीनाम परिपूर्ण वस्तु हैं। उनमें सभी शक्ति वर्त्तमान है। अर्थात् अप्राकृत नाम ही स्वयं नामी, अप्राकृत नाम ही रूपी, अप्राकृत नाम ही गुणी, अप्राकृत नाम ही लीलामय, अप्राकृत नाम ही परिकरवान्, अप्राकृत नाम ही रूप, अप्राकृत नाम ही गुण, अप्राकृत नाम ही परिकरवैशिष्ट्य, अप्राकृत नाम ही लीला हैं। ये चार प्रकारके वैशिष्ट्य अप्राकृत वस्तुमें ही नित्य वर्त्तमान हैं।

विचारपति—हमारे लिए उस अप्राकृत शब्दकी धारणा करने का क्या उपाय है ?

श्रील प्रभुपाद— अप्राकृत वस्तु जब कृपापूर्वक श्रीनामाचार्यके श्रीमुखसे हमारे सेवोन्मुख कर्णोंमें अवतीर्ण होते हैं, तब ही हम अप्राकृत शब्दब्रह्मकी धारणा कर सकते हैं, नहीं तो प्राकृतके साथ मिश्रित कर अप्राकृतकी धारणा कदापि संभवपर नहीं है। प्रत्येक प्राकृत इन्द्रियके अन्तर्भुक्त होकर अप्राकृत चिन्मय नित्य इन्द्रियसमूह आवृत होकर वर्त्तमान हैं। अतएव बाहरी जगतके आवरणसे मुक्त चिन्मय दर्शनमें जो सेवोन्मुखता वर्त्तमान है, उसीकी धारणा उन अप्राकृत इन्द्रियों द्वारा ग्रहण की जाती है।

विचारपति— हम प्राकृत व्यक्ति हैं। हमारे प्राकृत मिश्र भावका किस प्रकार परित्याग किया जा सकता है ?

श्रील प्रभुपाद—श्रीनामाचार्यकी कृपासे श्रीनाम ही हमारे कर्णोंको नियमित कर हमारे सभी प्राकृत भोगानुकुल भावोंका खण्डन कर देते हैं।

विचारपति— यदि नामको अप्राकृत (Transcendent) कहा जाय, तो वह 'नाम'

शब्दसे किस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है ? अप्राकृतको नामकी सीमामें ले आने पर वह क्या जड़-जगतकी एक अनित्य वस्तुके रूपमें परिणत नहीं होता ? ऐसा हो, तो नाम-रूपादि भी प्रपंचके अभिधान मात्र हैं।

श्रील प्रभुपाद— आप ये सभी बातें निर्विशेषवादियोंके अनुमान और कल्पनासे उत्पन्न मतवादसे संग्रह कर कह रहे हैं। आपने उन लोगोंके निकट यही सुना है कि क्लीबत्व (या नपुंसकत्व) ही अप्राकृत और निर्गुणका लक्षण है। नित्य परा शान्तिके राज्यमें सविशेष नामक कोई कार्यविशेष नहीं है। वहाँ सभी इन्द्रियोंकी गति, सभी नाम-रूप-गुण आदि स्तब्ध हो गये हैं !

विचारपति— हाँ, वहाँ सभी ही शून्य एवं निर्विशेष हैं।

श्रील प्रभुपाद— किन्तु इस प्रकारकी अभिज्ञता एवं अनुमान कहाँसे उत्पन्न हुए हैं ? वे प्राकृत जगतके ज्ञान या अभिज्ञताको अप्राकृत जगतमें ले जानेकी दुर्बुद्धिसे उत्पन्न हुए हैं। एक मल्लाह नौकाकी रस्सी खींचते समय नदीके तीरमें कङ्कड़, काँटे आदिके द्वारा बारम्बार पाँवमें आघात पाकर कल्पना कर रहा था कि यदि वह किसी समय लाख मुद्राएँ उपार्जन कर सके, तो सारी नदीके तीरमें रजाई या गद्दा बिछाकर रस्सी खींचने पर और उसे कष्टकी अनुभूति नहीं प्राप्त करनी होगी। मूर्ख मल्लाहने उसकी दरिद्रता की अनुभूतिको धनवान होनेके पश्चात् भी पानेकी इच्छा की थी। निर्विशेषवादियों का विचार भी ऐसा ही है। वे लोग प्रपंचकी जानकारीको प्रपंचातीत राज्यमें ले जाना चाहते हैं। वे लोग इस प्रपंचके नाम-रूप-गुण-लीला आदिके हेयत्व (तुच्छता) एवं अनित्यताको देखकर उसी प्रत्यक्ष ज्ञान या जानकारीसे अनुमान कर रहे हैं कि प्रपंचातीत राज्यमें भी यदि नाम-रूप-गुण-लीला का अस्तित्व रहे, तो ऐसा होने पर वह सब कुछ प्राकृत जगतकी ही तरह अनित्य एवं तुच्छ हो पड़ेगा। अतएव नाम-रूप-गुण लीला आदि प्रपंचके ही कार्य हैं, प्रपंचातीत जगतमें उनका अस्तित्व नहीं है। नाम-रूप-गुण-लीलाकी अस्तित्व-शून्यता ही प्रपंचातीत का लक्षण है ! ऐसे विचारमें प्राकृत अभिज्ञतावादसे उत्पन्न अनुमान एवं व्यतिरेक एकदेशीय विचारकी अवास्तवता वर्त्तमान है। इसमें वास्तव जगतका जो अवतारका विचार या श्रौत-पथ है, उसका सम्पूर्ण रूप से अनादर है। निर्विशेषवादी का ऐसा अनुमान है—तीसरे तलेके ऊपर बाघ नहीं है। क्योंकि जहाँ-तहाँ बाघ या जहाँ-तहाँ मनुष्य रह नहीं सकते। किन्तु अवतारवादी तीसरे तलेसे उतरकर आने पर कहते हैं—तीसरे तलेमें बाघ है। किन्तु उस बाघका हिंसायुक्त स्वभाव नहीं है। अवतारवादी की श्रौत उक्ति है, वह तीसरे तलेमें जो वास्तव विषय है, उसे अभ्रान्त एवं अटूट रूपसे जगत में प्रकाशित कर देते हैं। आरोहवादी का 'नेति' विचार केवलमात्र प्रपंचके अनुमान एवं जानकारीसे अप्रत्यक्ष वस्तुके प्रति उदित होकर प्रापंचिक जानकारीके द्वारा

ठगे गये व्यक्तियोंमें विश्वास उत्पन्न कर रहा है। इसलिए जहाँ 'नाम' हो, वहीं तुच्छता होगी, ऐसा अनुमान प्रपंचकी अभिज्ञता या जानकारीको प्रपंचातीत अधोक्षज राज्यमें ले जानेकी चेष्टारूप मूर्खता मात्र है। वैष्णव लोग अवतारवादी या श्रौत-पन्थी हैं। वे लोग आरोहवादी या तर्कपन्थी नहीं हैं। श्रीनाम स्वयं अपने आप ही प्रवृत्त हो सकते हैं।

विचारपति— स्वतःप्रवृत्ति या initiative किसे कहते हैं ?

श्रील प्रभुपाद— जो स्वयं ही प्रेरणा दे सकता है, जो सब प्रकारसे निरपेक्ष एवं अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियुक्त है।

विचारपति— क्या जड़ीय नाम अप्राकृत से प्रवृत्ति प्राप्त करता है ?

श्रील प्रभुपाद— जड़ीय नाम अप्राकृत नामका विकृत हेय प्रतिफलन है। अप्राकृत का अविकृत अवतार जड़ता नहीं है। अप्राकृत के स्वरूप-प्रतिबन्धक प्रतिबिम्बित नाम ही प्राकृत नाम-समूह हैं। हम वर्त्तमान समय में तीसरे मानके राज्यमें अवस्थित हैं। तुरीय मानमें हमारा प्रवेशाधिकार नहीं है। अप्राकृतका असम्पूर्ण रूपसे दर्शन बीचमें स्थित आवरणसे ही होता है। वह प्राकृत दर्शन मात्र है।

विचारपति— हाँ, जिस प्रकार हम रङ्गीन काँचके भीतरसे सूर्य-किरणके यथार्थ रंगको देख नहीं सकते; यदि हम हरे रंगके काँच-गृहमें आबद्ध रहें, तो हम सूर्यके निर्मल शुभ्र या सफेद प्रकाशको देख नहीं पाते, हरे रंगका प्रकाश ही देखते हैं।

श्रील प्रभुपाद—अप्राकृत शुभ्रताके बाधक प्राकृत हरे रंगके आवरणको दूरकर स्वयं ही स्व-स्वरूपसे प्रकाशित हो सकते हैं, यही अप्राकृत की योग्यता है। प्राकृतमें वह योग्यता नहीं है।

विचारपति—उपाय भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, किन्तु सभीका लक्ष्य एक है।

श्रील प्रभुपाद— यदि आप लोग श्रौत-विषयके श्रवणमें सहिष्णुता परित्याग करें, तो ऐसा होने पर अश्रौत मतवाद-समूह ही आप लोगोंके हृदयमें अधिकार कर बैठेगा एवं आप लोग सत्य कथा सुननेके लिए चिरकाल ही उदासीन रहेंगे। श्रौत-प्रणाली एवं जन-साधारणमें प्रचलित अन्धाधुन्ध मतवाद—दोनों भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। श्रौत-विषयके श्रवणमें सहिष्णुता एवं श्रवणोन्मुखता आवश्यक है। श्रवणोन्मुखताके अभावसे ही जगतमें ऐसे नाना प्रकारके मतवाद प्रवेश कर गए हैं।

विचारपति— क्या नाम संकीर्त्तन ही सबसे अधिक सहज एवं श्रेष्ठ उपाय है ?

श्रील प्रभुपाद— नाम-संकीर्त्तन ही एकमात्र उपाय है। इसको छोड़कर अधोक्षज राज्यमें प्रवेश करनेका और कोई उपाय नहीं है।

विचारपति— क्या नाम-संकीर्त्तन ही सबसे श्रेष्ठ उपाय है ?

श्रील प्रभुपाद— नाम-संकीर्त्तन ही एकमात्र लक्ष्यका एकमात्र उपाय है। नाम-संकीर्त्तनको छोड़कर दूसरा उपाय नहीं है। नाम-संकीर्त्तन द्वारा जो प्रेम प्राप्त होता है, उसे छोड़कर और कोई परम लक्ष्य भी नहीं है। इसलिए शास्त्रोंमें कहा गया है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

कलिकालमें हरिनामको छोड़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है, नहीं है, नहीं है। तीन बार प्रतिज्ञा कर कही गई है। और भी कहा गया है—

द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पञ्चरात्रैस्तु केवलम् ।
कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः ॥

अर्थात् द्वापर युगमें भगवान् विष्णु केवल पंचरात्र-विधिसे पूजे जाते थे। किन्तु कलिकालमें वे भगवान् केवल नामके द्वारा ही पूजे जाते हैं।

विचारपति— यदि भक्तिपूर्ण होकर बिना विश्रामके भगवानका नाम ग्रहण किया जाय, तो क्या सभी प्रकारके प्रतिबन्धक या बाधाओंको दूर किया जा सकता है ?

श्रील प्रभुपाद— किन्तु शुद्ध नाम ग्रहण करना होगा। जड़मिश्र अक्षर या शब्द ग्रहण करनेसे नाम-ग्रहण नहीं हुआ। यदि हम नाम के साथ ऐतिहासिक, आध्यात्मिक या रूपक भावयुक्त किसी प्रकारके सम्बन्धको योग करें, तो नामका स्वरूप समझ नहीं पावेंगे। नारियलके बाहरी रेशेदार छिलका, कठिन आवरण, गुठली आदि बाहरी आवरणोंको नारियलके भीतरी सार-पदार्थ, जल आदि समझकर उसे चर्वण या ग्रहण करने के लिए बहुत चेष्टा करने पर भी या दांत टूट जाने पर भी शस्य या सार-वस्तुका भक्षण नहीं होगा।

विचारपति—केवलमात्र नाम-उच्चारण या मानसिक किसी प्रकारकी धारणा या मनकी एकाग्रताकी आवश्यकता क्या है ?

श्रील प्रभुपाद—आपका चित्त या मन जड़ जगतकी मलिनता एवं दूषित अंशसे निर्मुक्त न होनेपर आप कैसे नाम ग्रहण करेंगे ? नाम ग्रहण किसी प्रकारका मानसिक या शारिरिक क्रिया-विशेष नहींहै। नाम-ग्रहण के लिए आपको दूसरी किसी प्रकारके कृत्रिम उपायका अवलम्बन नहीं करना होगा। जो जो आवश्यक है, वह हरिनाम संकीर्त्तन ही साधन करेंगे अर्थात् नाम-कीर्त्तन ही सभी अप्राकृत अनुभूतियों को लायेंगे एवं साथ साथ बाहरी असम्पूर्ण धारणओंसे मुक्ति प्रदान करेंगे।

विचारपति—ऐसा हो, तो क्या केवल उच्चारणमात्रसे ही सभी कुछ सिद्ध हो जायगा ?

श्रील प्रभुपाद—नामापराध, नामाभास

और नाम—ये तीन प्रकारके विचार हैं। जब हम अपनेको Elevationist (कर्मी) समझकर धर्म, अर्थ, कामको पानेके लिए नाम-ग्रहण की छलना प्रकाश करते हैं, तब हमारा नामाश्रयके बदले नामापराध ही होता है एवं केवल जड़ विचारका ही मंगल प्राप्त होता है। जब हम अपनेको मोक्षकामी (Salvationist) समझते हैं, तब नामाभासकी चेष्टा दिखलाने पर भी 'नामाभास' मोक्षकी आकांक्षायुक्त होकर उदित नहीं होता, किन्तु उसके फलसे स्वाभाविक बद्धविचार भोगसे मुक्ति होती है। मोक्षकी आकांक्षा परित्याग कर नाम-ग्रहण करनेकी चेष्टा करते करते जब अनर्थों की निवृत्ति होती है, तब ही नामाभासका उदय होता है।

विचारपति— ऐसे विचारके साथ नाम-ग्रहणमें ही मंगलकी संभावना है।

श्रीलप्रभुपाद— नामापराध हमें पाप-पुण्यके पथमें ले जाता है। अधर्म, अनर्थ, एवं कामके अपूरण या धर्म, अर्थ और काम—ये सभी नामापराधके फल हैं। किन्तु यह शुद्ध नामके उच्चारणका प्रतिबन्धक है। इसलिए हमें नामापराधसे सर्वदा सावधान रहना होगा।

विचारपति— हाँ, नाम-भजनके समय हमारे हृदयमें किसी प्रकारकी अपवित्र चिन्ताको नहीं लाना होगा।

श्रीलप्रभुपाद—केवल 'अपवित्र' ही नहीं; पवित्र, अपवित्र, पुण्य, पाप सभी कुछ जड़जगतकी परिभाषाएँ एवं विचार हैं। पवित्रता एवं पुण्यबुद्धि भी अप्राकृत श्रीनाम-ग्रहणके प्रतिबन्धक हैं। धर्म-कामना, पुण्य-कामना, पवित्र-कामना या अधर्म-कामना, पाप-कामना और अपवित्रता-कामना— सभी कुछ ही अनर्थ हैं एवं नामोच्चारणके प्रतिबन्धक हैं। हम धर्म, अर्थ, काम आदिकी प्राप्तिके लिए समाज-नीतिका पालन करते हैं। वर्णाश्रम-धर्म हमें पवित्रता एवं साधुता प्रदान करता है। किन्तु ये सभी विधियाँ—आत्मधर्म नहीं हैं। इन विधियोंमें आबद्ध रहने पर शुद्ध नामोच्चारण नहीं होता। नामाभाससे ही हमारी अनर्थ-मुक्ति होती है। नामाभास नामोदयकी पूर्वावस्था है या नाम-सूर्यका अरुणोदय-स्वरूप है। नामाभासके पश्चात् हम नामका उदय देख पाते हैं। हम अभी प्रपंचके सम्बन्ध-समूह जोड़नेके लिए चेष्टा कर रहे हैं, हम फलाकांक्षी हैं। जब हम नामके निकट धर्म-अर्थ-कामकी प्रार्थना करते हैं, तब नामापराधका उदय होता है। जब हम किसी प्रकारकी इन्द्रियपरायणताकी भूमिकामें खड़े होकर नाम-ग्रहणकी चेष्टा दिखलाते हैं, तब नामापराध होता है। नामोच्चारण-प्रणालीको एकमात्र-प्रणाली विचार न कर बहुत प्रकार की प्रणालियोंमें से एक समझना नामापराध है। नाम-ग्रहण-प्रणालीमें लोगोंका आकर्षण करनेके लिए ही ऐसा नामका अर्थवाद कल्पित हुआ है, ऐसा समझना नामापराध है। नामाचार्य गुरुदेवके प्रति मर्त्यबुद्धि, नामकी अवज्ञा, नाम-माहात्म्य-प्रतिपादक शास्त्रोंको दूसरे-दूसरे राजस-तामस शास्त्रोंके साथ समज्ञान, नामको भगवानके स्वरूप-

रूप-गुण-परिकरवैशिष्ट्य-लीलासे भिन्न समझना, देहके प्रति आत्मबुद्धिके साथ नामोच्चारणकी चेष्टा दिखलाना, नामबल पर पापबुद्धि आदि नामापराध हैं। नामाभास के पश्चात् हम अप्राकृत नामका विचार देख पाते हैं। अप्राकृत कृष्णनाम चिन्तामणि, पूर्ण, शुद्ध, नित्य एवं मुक्त वस्तु हैं। अप्राकृत नामके देह और अप्राकृत नामके देहीमें कोई भेद नहीं है।

विचारपति— Subject (कर्त्ता) एवं Object (कर्म) का क्या एक विचार करना होगा ?

श्रीलप्रभुपाद— यह Subject (कर्त्ता) एवं Object (कर्म) की बात नहीं है। यह यथार्थ सत्य अधिष्ठान (Entity) की बात है, वाच्य एवं वाचक की बात है। वाचक वस्तु नाम हैं, जो वाच्य नामीमे अभिन्न हैं। हमारे निकट वाच्यसे भी वाचक स्वरूपकी अधिकतर उपयोगिता है। किन्तु वाचकके निकट किसी प्रकारकी इन्द्रिय-तृप्ति-कामना हमें वाचकके स्वरूप-विज्ञानसे दूर हटा देती है। भुक्ति-कामना एवं मुक्ति-कामना इन्द्रिय-तर्पणकी बातें हैं। मेरी भुक्तिमें मेरी स्वार्थपरता रह सकती है, उसमें आपका क्या स्वार्थ है ? जहाँ पर कृष्णके परिपूर्ण सुखका अनुसंधान हो, कृष्णका काम चरितार्थ हो, वहाँ शुद्ध नामका उदय होता है। उस प्रकारके नामके उदय होने पर गौणरूपसे मेरी सभी यथार्थ स्वार्थपरता एवं दूसरे जीवोंकी शुद्ध स्वार्थपरताकी युगपत् या एक साथ सिद्ध होती है। कृष्णके कामकी जहाँ चरितार्थता नहीं है, वह अभक्ति है। नामाश्रित व्यक्ति लोग उस प्रकारकी अभक्ति के लिए व्यस्त नहीं हैं। हम भुक्ति या मुक्तिके कांगाल नहीं हैं। भक्ति हमारी आत्माकी नित्या वृत्ति है। हमारा स्वरूप-निर्णय हमें भक्तिको छोड़कर और किसी दूसरे साधन या साध्यकी ओर नहीं ले जाता। अतएव श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने कहा है—

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
र्गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः ॥

अर्थात् न मैं ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय राजा हूँ, न वैश्य हूँ और न ही शूद्र हूँ, मैं ब्रह्मचारी नहीं हूँ, गृहस्थ नहीं हूँ, वानप्रस्थ नहीं हूँ, संन्यासी भी नहीं हूँ। किन्तु उन्मीलित (नित्यस्वतः प्रकाशमान) परमानन्दपूर्ण-अमृत समुद्ररूप श्रीकृष्णके पदकमलोंके दासोंका दासानुदास हूँ।

मैं कार्ष्ण हूँ। मैं वैष्णवोंका दासानुदास हूँ। मैं अपनेको ब्राह्मण-कुलोत्पन्न, क्षत्रिय-कुलोत्पन्न, वैश्य-कुलोत्पन्न या शूद्र, अन्त्यज, पाँचवें, छठवें, सातवें आदि किसी कुलोत्पन्न नहीं समझता। मैं अपनेको अलास्का अमेरिका, यूरोप या भारतवर्षका अधिवासी भी नहीं समझता। मैं अपनेको संन्यासी ब्रह्मचारी, गृहस्थ या वानप्रस्थ या कोई

आश्रमी भी नहीं समझता। ये सभी ही संकीर्ण प्रादेशिकता मात्र हैं। मैं आत्मा हूँ, चेतन हूँ। मैं विभु चैतन्य श्रीकृष्णका नित्य दासानुदास हूँ। पहले कहे गये सभी परिचय मायिक परिचय मात्र हैं। मायिक परिचय मेरे ऊपर प्रभुत्व विस्तार करने पर मेरे मुखसे श्रीनाम प्रकाशित नहीं हो सकते। किसी प्रकार का प्राकृत गौण कार्य हमें अप्राकृत अभिसार या अभिगमनमें बाध न प्रदान करें। हम जड़-सम्बन्धकी बलि-वेदीमें अपना मस्तक न प्रदान करें।

विचारपति— नाम स्थूल या सूक्ष्म इन्द्रियोंके द्वारा उच्चारित हो सकता है क्या ?

श्रील प्रभुपाद— हम इसी बातका उत्तर ही इतने समयसे आलोचना कर रहे हैं। स्थूल या सूक्ष्म शरीरके द्वारा नामका उच्चारण नहीं होता। किन्तु केवल चेतन आत्माकी शुद्ध चेष्टाके उदयसे ही अर्थात् भगवत्सेवाका उन्मेषण होने पर मनके द्वारा चालित होकर बहिर्जगतमें नाम-सेवा संभवपर होता है। श्रीकृष्णके नाम-रूप-गुण-लीला आदि प्राकृत आँख-कान-जिह्वा आदि इन्द्रिय या मनके द्वारा ग्रहण नहीं किये जा सकते। जीव जब सेवोन्मुख होते हैं, तब उन सेवोन्मुख इन्द्रियों में सर्वशक्तिमान् स्वयं-प्रकाश नाम स्फूर्ति प्राप्त करते हैं। वर्त्तमान समयमें हमारी आत्मा निद्रित है। आत्माका प्रतिस्वरूप या कार्याध्यक्ष मन सुप्त प्रभुकी प्रतिमुहूर्त में ही वंचना करना चाहता है। इसलिए मन जो कुछ करेगा, वह आत्माका स्वार्थ नहीं है, अपना क्षुद्र स्वार्थ है। मन यदि नाम-ग्रहणका छलना दिखलायें या मनका आज्ञावाहक स्थूलकार्यसाधक शरीर यदि नामोच्चारणका व्यायाम प्रदर्शन करे, तो वह उनकी कोई न कोई अभिसंधियुक्त इन्द्रियतर्पण मात्र होगा। आत्मा उसका कोई फल प्राप्त नहीं करेगा। किन्तु जब श्रीनामाचार्य श्रीगुरुदेवकी कृपासे आत्माकी उन्मुखता-वृत्ति उदित होती है, तब आत्माके जागरित होनेपर आत्माका प्रतिभू या प्रतिनिधि और कर्मकर्ता मन एवं स्थूल देह—उनकी दुष्ट अभिसन्धि एवं विमुखता का संरक्षण नहीं कर पाते। वे भी परमात्माकी सेवोन्मुख आत्माके आनुगत्यमें जो सभी कार्य किया करते हैं, वे आत्मा या परमात्माके ही निज-सुखसाधक हुआ करते हैं। श्रीनामाचार्य गुरुदेवने हमें ये सभी बातें बतला दी हैं। हम कृष्ण तत्त्वविद् श्रीनामाचार्यके उपदेश ग्रहण करने पर ही मङ्गल प्राप्त कर सकते हैं। जो व्यक्ति सब समय एक सौ में से पूरा एक सौ प्रतिशत कृष्णसेवामें या कृष्ण-सुख तात्पर्यमें सभी चेष्टाओंको नियुक्त कर चुके हैं, वे ही श्रीगुरुदेव हैं। उत्तम जागतिक कुलीनता, पाण्डित्य, सौन्दर्य या ऐश्वर्य— श्री गुरुदेवके गुरुत्वके लक्षण नहीं हैं।

महाकुलप्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
सहस्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्यादवैष्णवः॥

अर्थात् महान् कुलमें उत्पन्न होने पर भी सभी यज्ञोंमें दीक्षित होने पर भी सहस्रों शाखायुक्त वेदोंका अध्ययन करने पर भी

अवैष्णव गुरु नहीं है। अवैष्णव कदापि गुरु नहीं हो सकते।

विचारपति—हाँ, निश्चय ही।

श्रील प्रभुपाद— वैष्णव कहनेसे जो एक सौ में से एक सौ प्रतिशत विष्णुकी सेवा करते हैं। यह परिदृश्यमान जगत् विष्णु-मायासे उत्पन्न है। इस अचित् जगत्की कोई भी वस्तु, क्रिया या चिन्ता एक क्षणके लिए भी जिन्हें विष्णुकी परिपूर्ण सेवासे विच्युत नहीं कर सकती, वे ही वैष्णव या गुरुदेव हैं। विष्णु अधोक्षज वस्तु हैं। 'अधोक्षज' शब्द का अर्थ "अधःकृतं अक्षजं बद्धजीवानां इन्द्रियजज्ञानं येन सः।" यदि कोई व्यक्ति इन्द्रियज ज्ञानसे उत्पन्न वस्तुको विष्णु समझ कर उसकी सेवामें नियुक्त हो, तो उसे 'वैष्णव' या 'गुरु' कहा नहीं जा सकता। विष्णु कदापि हमारे इन्द्रिय-ज्ञानके निकट आत्मसमर्पण नहीं करते। यदि वे कदापि हमारे इन्द्रियतर्पणके निकट आत्मसमर्पण करते, तो हम उन्हें इस जड़ प्रपंचकी अन्यतम वस्तु समझकर ऐसे प्रभुके प्रभु रूपमें अपनेको विचार कर बैठते। विष्णुकी श्रीमूर्ति स्वयं विष्णुके स्वरूपसे अभिन्न हैं। अर्चावतारको 'काठ' 'पत्थर समझना या किसी कुम्हार, सूत्रधार, भास्कर (कारीगर विशेष), आदि व्यक्तियों द्वारा रचित वस्तु समझना विष्णु-मायाके दर्शनमें भोगीका भोग-पिपासा मात्र है। जो व्यक्ति विष्णुमायाके कुदर्शनके फन्दे से उद्धार पाकर सुदर्शनमें प्रतिष्ठित हुए हैं, वे श्रीअर्चावतारको या श्रीनामको प्राकृत वस्तु नहीं समझते। वे लोग नायक-पूजा या पौत्तलिकताको प्रश्रय नहीं देते। विष्णु की बहिरङ्गा मायाके द्वारा कवलित व्यक्ति विशेषको ईश्वर या गुरुके रूपमें कल्पना करनेके विचारको अंग्रेजी भाषामें anthropomorphism कहा जाता है। हम कदापि विष्णुमायाके कवलमें फँसे हुए व्यक्तिविशेषको गुरु या ईश्वर समझ कर anthropomorphism का आवाहन नहीं करेंगे। परव्योम या पराकाशके विचारको ग्रहण करनेके प्रयासमें यहाँके अणु-परमाणु-समूह हमें अप्राकृत राज्यके अभियान-पथमें बाधा प्रदान करते हैं। इसलिए हम वस्तुके बाहरी स्थूल दर्शन एवं सूक्ष्म दर्शन दोनों का ही निराकरण कर आत्मदर्शनके राज्य में अग्रसर होंगे। निर्विशेषवादीका त्रिपुटी-विनाश या ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेयरूप त्रिविध कार्यकी विनाश-चेष्टा हमारे विचारका विषय नहीं है। अप्राकृत ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय— ये तीनों ही नित्य हैं।

विचारपति—निर्विशेषवादी जड़-जगतके नश्वर भावोत्थ त्रिपुटी विनाशको उनकी सिद्धि मानते हैं।

श्रील प्रभुपाद— यह उनकी जागतिक कटु अभिज्ञताकी धारणासे गृहीत है। वे लोग शान्तिका स्वप्न देखकर जड़-वैचित्र्यके विपरीत या प्रतियोगी अवस्थाको ही शांति-धाम समझते हैं। जड़ जगतका सविशेष-धर्म अत्यन्त अशान्ति और क्लेश प्रदान कर रहा है। इसलिए निर्विशेषताका कोई काल्पनिक भाव उन्हें क्लेशके दावानलसे रक्षा करेगा— ऐसी कल्पना ही उनकी विचित्रता विनाशकी चेष्टा या निर्विशेषवाद की सृष्टि करती है।

जिस प्रकार जगतमें देखा जाता है कि जागतिक दुःख-कष्टसे अत्यन्त मर्माहत एवं जर्जरित होने पर कोई कोई व्यक्ति कटु विचित्रताकी अनुभूतियुक्त जीवनको विनाश कर अर्थात् आत्म-हत्यादि कर शान्तिकी आशा किया करते हैं। मायावादियोंका भी यही विचार है। वे जन्म-जन्मान्तर प्राकृत विचित्रतापूर्ण-सुख-दुःखपूर्ण जगतमें प्रवृत्त जीवन अतिवाहित कर इतनी कटु अभिज्ञता संग्रह कर बैठे हैं कि विचित्रता विनाश या आत्महत्या ही उनके चरम-प्राप्यके रूपमें धारणा करली गई है। उनके घटाकाश या पटाकाश कदापि महाकाशके साथ मिलकर एक नहीं हो सकते, समजातीयता प्राप्त कर भी अपना वैशिष्ट्य रक्षा करते हैं। तब वह अपहृत या परित्यक्त वैशिष्ट्य हमारा बोधगम्य नहीं होता। सूक्ष्मताका विचार उसे विश्लेषण नहीं कर पाने पर भी सुसूक्ष्म विचारक लोग उसे जान सकते हैं। अंश कदापि अंशी या समग्र वस्तु नहीं है। तीन हाथ परिमित अवकाश या आकाश कदापि अनन्त अवकाश या आकाशमें परिणत नहीं हो सकता। 'भूताकाश' एवं 'महाकाश' की वाग्वैखरी हमारी विमुख बुद्धिमत्ताको और भी अधिक रूपसे विपथगामी कराती है।

विचारपति—जब तक नाम है, तब तक त्रिपुटी है। त्रिपुटी विनष्ट होनेपर नामका और अस्तित्व नहीं रहता, यही मायावादियों का विचार है।

श्रील प्रभुपाद—इस विचारसे श्रौत या अवतार-पथ स्वीकार नहीं किया गया है। अनुमान और श्रुतिके विकृत अर्थसे ऐसा तर्कपथ सृष्टि किया गया है। हम श्रौतपथ में केवलमात्र व्यतिरेकी विचार ही नहीं प्राप्त करते। किन्तु अन्वय विचार ही प्रचुर परिमाणमें देख पाते हैं। श्रीनामके अनुशीलन में हम उपादेयता एवं नवनवायमान चमत्कारिताका अन्वयमुखी वास्तव विचार देख पाते हैं।

विचारपति— हाँ, हमारे प्राणोंकी आकांक्षा केवलमात्र व्यतिरेक विचारसे तृप्ति प्राप्त नहीं कर सकती। अन्वय-विचार की वास्तवता वरण करना चाहती है।

श्रीश्रील प्रभुपाद— ब्रह्मका विचार केवल मात्र व्यतिरेकी या 'नेति, नेति' विचारका भाव-विशेष है। किन्तु विष्णुके विचारमें अन्वय-व्यतिरेक द्वारा वेद्यवास्तव वस्तुकी विचित्रता एवं चमत्कारिता का अनुसंधान वर्त्तमान है।

विचारपति— ऐसा होने पर क्या नामसंकीर्त्तन ही उपाय एवं उपेय— दोनों ही है?

श्रील प्रभुपाद—हाँ, नाम-संकीर्त्तन ही साधन एवं साध्य है, उपाय एवं उपेय है। जो व्यक्ति नाम-साधनको छोड़कर दूसरी साधन-प्रणालियोंको ग्रहण करते हैं, उनके उपेयसे उपाय पृथक् है। निर्विशेष अनुभूति या आत्महत्या ही उपेय एवं दूसरे-दूसरे जो

कोई इन्द्रियतर्पणपर कल्पित मत या पथ ही उनका उपाय है।

रावसाहब मुदालियार—लक्ष्यमें उपस्थित होने पर हमारा क्या कर्त्तव्य है?

श्रील प्रभुपाद— श्रील रामानुजाचार्यके विचारमें अढ़ाई प्रकार रससे विष्णुकी सेवा मुक्त पुरुषोंका कर्त्तव्य कहा गया है। शांत, दास्य एवं गौरव सख्यरससे वे लोग श्रीविष्णु की सेवा करते हैं। विश्रम्भ सख्यके लिये श्रीरामानुजके सख्य रसके विचारमें स्थान नहीं है। अतएव उनके सख्यरसके विचार को आधा विचारमात्र कहा जा सकता है।

विचारपति—सूरि लोग क्या नित्य ही इन सभी रसोंसे उपासना करते हैं?

श्रील प्रभुपाद— दिव्य सूरि लोग मुक्त होकर भी नित्यकाल विष्णुकी ऐसी उपासना किया करते हैं। हमने श्रीधाम मायापुर एवं कलकत्ता श्रीगौड़ीय मठकी पारमार्थिक प्रदर्शनीमें गोलोकके निम्न-आधेके रस एवं गोलोक-परार्द्ध की पंचरस-परिपूर्णता की बात आदर्शके द्वारा प्रदर्शन किया था। नीचेसे संभ्रम-युक्त सेवाको छोड़कर ऊपरके अर्द्धमें स्थित संभ्रम-विहीन सेवा दर्शनका विषय नहीं होता। किन्तु ऊपरके आधेमें उठने पर विश्रम्भपूर्ण सेवाके विषयको दर्शन किया जा सकता है। सखा लोग किस प्रकार परात्पर भगवानके कन्धेपर पैर रखकर ऊँचे ताल-वृक्षसे तालफल संग्रह करते हैं एवं वही तालफल क्रमशः स्वयं आस्वादन करते करते सर्वशेष उच्छिष्ट या झूठन परम प्रीतिके साथ कृष्णको प्रदान कर सकते हैं, वह संभ्रमयुक्त सख्य रस के रसिकोंके निकट अपरिज्ञात है। बाल-कृष्ण की उपासनामें माता-पिता कृष्णको उनके आविर्भावके सूत्रसे ही पूर्ण-प्रीतिके साथ सेवा करते हैं। किन्तु दास्य या सख्य रसमें उस भावके परिदर्शनकी योग्यता की संभावना नहीं है।

विचारपति— सभी कुछ ही प्रेमकी विचित्रताएँ मात्र हैं।

श्रील प्रभुपाद— तथापि तटस्थ विचार से इनमें तारतम्य वर्त्तमान है। संसार-भय से भीत व्यक्ति कोई वेदको, कोई धर्म-शास्त्र को, कोई तो महाभारत का भजन करते हैं, तो करें। मैं किन्तु इस वृन्दावनमें एकमात्र नन्दकी उपासना करता हूँ, जिनके आंगनमें स्वयं परमब्रह्म श्रीकृष्ण लोट-पोट करते हुए खेल रहे हैं। बालकृष्ण की उपासना की अपेक्षा किशोर कृष्णकी उपासनामें व्रजवधूओंकी जो प्रीति-पराकाष्ठा देखी जाती है, उसकी बात या महत्ता साधारण धार्मिक व्यक्ति समझ नहीं सकते। इसलिए कहा गया है—

कम्प्रति कथयितुमीशे
सम्प्रति को वा प्रतीतिमायातु।
गोपति तनयाकुंजे
गोपवधूटी विटं ब्रह्म ॥

यह बात किसे कह सकूँगा, और कौन इस बात पर विश्वास करेगा कि कालिन्दी तट-कुञ्जमें गोपवधू-लम्पट परमब्रह्म क्रीड़ा

किया करते हैं। ये सभी बातें संभ्रमयुक्त सेवामें आसक्त व्यक्तियोंके निकट अप्रकाशित है।

मुदालियार— ऐसा होनेपर क्या यही समझना होगा कि जब कोई लक्ष्य वस्तुके निकट पहुँचते हैं, तब विष्णुकी संख्या भी वृद्धि प्राप्त होती है ? अर्थात् एक एक व्यक्ति विष्णु क्या एक एक प्रकारकी लीला करनेके लिए उपस्थित होते हैं ?

श्रील प्रभुपाद— भगवान् केवल एक ही हैं, बहुतसे नहीं। किन्तु वे उनकी अविचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे लीला-वैचित्र्य प्रकट किया करते हैं। Personality of Vishnu is Krishna अर्थात् विष्णुके स्वयं-रूप अधिष्ठान ही कृष्ण हैं।

मुदालियार—क्या मुक्त होने के पश्चात् भी 'भक्ति' रहती है ?

श्रील प्रभुपाद— हम इतने देरसे इसी प्रश्नका उत्तर ही तो आलोचना कर रहे हैं। मुक्त पुरुष ही अविमिश्रा भक्ति याजन कर सकते हैं। अमुक्त व्यक्तियोंकी चेष्टा अभक्ति या मिश्र कार्यविशेष है।

'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते।' अर्थात् मुक्त पुरुष लोग भी स्वेच्छासे शरीर धारण कर भगवान्‌की भजना किया करते हैं। भक्तिकी तीन अवस्थाएँ हैं— साधनावस्था, भावावस्था एवं प्रेमावस्था। श्रवण-कीर्त्तनादि भक्तिके नौ प्रकारके अंग पहले साधन भक्तिमें ही पालन किये जाते हैं। श्रद्धाके साथ श्रवण कीर्त्तनादि करते करते सभी अनर्थ जितने परिमाणमें दूर होते हैं, उसी परिमाणमें श्रद्धावृत्ति क्रमशः निष्ठा, रुचि, आसक्ति एवं 'स्थायीभाव रति' नामसे परिचित होती है। श्रवण-कीर्त्तनादिके अनुशीलन में वह रति जितनी ही गाढ़ होती है, उतनी ही प्रेमादि नाम प्राप्त होती है। क्रमशः प्रेम वृद्धि पाकर स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव तक उन्नत होता है। जिस प्रकार गन्नेका रस जितना ही गाढ़ा होता है, उतना ही पहले गुड़त्व, पश्चात् खण्डसारत्व, शर्करात्व, सितोपलत्व एवं उत्तम सितावस्था प्राप्त करता है। इस स्थायी भावमें विभाव अनुभाव, सात्त्विक एवं व्यभिचारी—ये चारों भाव मिलित होकर रसोदय होता है। कृष्ण भक्तिके कार्यमें स्थायी भावमें ये सभी सामग्रीयुक्त होने पर कृष्ण-भक्ति रस होता है। स्थायी भाव ही रसोद्दीपन-कार्यमें मुख्य आधार है। उसके साथ विभावादि चार सामग्रियाँ संयुक्त होती हैं। विभाग दो प्रकार का है— आलम्बन एवं उद्दीपन। आलम्बन फिरसे दो प्रकारका है—विषय एवं आश्रय। कृष्ण भक्तिरसमें भक्त ही आश्रय है, कृष्ण ही विषय हैं एवं कृष्णके गुणसमूह ही उद्दीपन हैं। Predominating aspect ही विषय है एवं Predominated aspect ही आश्रय है। Predominated aspect अर्थात् आश्रयके बिना विषयका अर्थात् Predominating aspect का Specification (वैशिष्ट्य) रह नहीं सकता। निर्विशेषवादी लोग परात्पर तत्वको क्लीबत्व में आरोप करनेकी चेष्टा करते है। चिन्मय विलास-वैचित्र्यकी अवतारणाके बिना केवल क्लीब-धारणा-मात्रसे विचारकी सुष्ठुता नहीं

हो सकती। Old Testament में यहूदियोंके It God की धारणा या मायावादियोंकी क्लीब ब्रह्म-धारणा या भाण्डारकार आदियोंका अकेले वासुदेवका विचार आदि जागतिक सम्बन्ध (reference) एवं अनुमान मूलसे कल्पना किये गये अपसाम्प्रदायिक मतवाद मात्र हैं। इसकी अपेक्षा विशिष्टाद्वैतवादमें श्रीरामानुजाचार्य की श्रीलक्ष्मीनारायण-उपासना सब प्रकारसे श्रेष्ठ है। विषय-विग्रह नारायण आश्रय-विग्रह महालक्ष्मीके साथ वैकुण्ठमें नित्यकाल संभ्रम रसके सेवकोंद्वारा सेवित हैं। हम महालक्ष्मीको कदापि जीवकोटिके अन्तर्गत करने की चेष्टा नहीं करेंगे। आस्तिक मात्रको ही सब प्रकारसे निर्विशेषवादका परित्याग करना होगा। निर्विशेषवादका गन्ध रहनेतक कोई भी आस्तिक कहे नहीं जा सकते। जो लोग विष्णुके नित्य सविशेष-विग्रहत्व स्वीकार नहीं करते, उन्हें हम आस्तिक नहीं कह सकते। वैकुण्ठमें शतसहस्रों महालक्ष्मियाँ भगवान् विष्णुकी सेवामें नियुक्त हैं। वैकुण्ठ-धाम नित्य है, वैकुण्ठके सेवक लोग नित्य हैं। वैकुण्ठपति एवं वैकुण्ठपतिके सेवकोंके नाम-स्वरूप-रूप-गुण-क्रिया आदि सभी ही नित्य हैं।

मुदालियार—वैकुण्ठमें क्या सहस्र सहस्र लक्ष्मियाँ वर्त्तमान हैं?

श्री प्रभुपाद—श्रीब्रह्म-संहितामें कहा गया है—

लक्ष्मीसहस्रशतसंभ्रमसेव्यमानं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।

अर्थात् मैं उन आदि पुरुष गोविन्दका भजन करता हूँ, जो सहस्रशत लक्ष्मियों द्वारा संभ्रमपूर्वक सेवित हो रहे हैं।

न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च॥

अर्थात उन परातत्व वस्तुके न कोई प्राकृत कार्य हैं और न कोई प्राकृत इन्द्रियाँ हैं। अर्थात् उनकी इन्द्रियाँ एवं कार्य सभी ही अप्राकृत हैं। उनके समान या उनसे बढ़कर और कोई भी वस्तु देखी नहीं जाती। उनकी पराशक्ति विभिन्न प्रकारसे प्रकाशित है। वह स्वाभाविकी एवं ज्ञान-बल-क्रिया रूपा है। परात्पर तत्व निःशक्तिक नहीं हैं। वे सर्वशक्तिमान् एवं चित् तथा अचित् शक्ति-विशिष्ट परमेश्वर हैं। श्रीरामानुजाचार्यके दर्शनमें इसी प्रकारसे ही व्याख्या की गई है। गौड़ीय वैष्णव-दर्शनमें चित्शक्ति को और भी सूक्ष्मतर विचारसे अन्तरङ्गा और बहिरंगा शक्ति की मध्यवर्ती तटस्था शक्ति भी कहा गया है।

विचारपति— यह Cult (साम्प्रदायिक मतवाद) है।

श्रील प्रभुपाद—Cult शब्दमें मेरी पहली आपत्ति है। यही एकमात्र सिद्धान्त है। वैष्णव-धर्म 'Cult' शब्दका वाच्य नहीं जा सकता। वह किसी मानव-कल्पित साम्प्रदायिक मतवादमें आबद्ध नहीं है।

विचारपति— हाँ, वैष्णव-धर्म

असाम्प्रदायिक है। Absolute itself is Vaishnavism अर्थात् परिपूर्ण वस्तु ही वैष्णवता है।

श्रील प्रभुपाद—Itself नहीं है, Himself. 'असाम्प्रदायिक' कहनेसे कुसाम्प्रदायिक लोग जो असाम्प्रदायिकताकी धारणा पोषण करते हैं, वैष्णवधर्म उस प्रकारका असाम्प्रदायिक नहीं है। वैष्णव-धर्म उच्छृंखल अश्रौत मनोधर्म नहीं है। श्रौत आम्नाय-प्रणालीमें वैष्णव-धर्मकी भित्ति स्थापित या प्रतिष्ठित है। इसलिए वैष्णवधर्म सत्साम्प्रदायिक है।

विचारपति—अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, आदि मतोंके बारेमें प्रचलित लोक मत दूसरे प्रकार का है। वे लोग अद्वैत विचारमें ही निर्गुण एवं द्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि विचारोंमें सगुण ईश्वरका अस्तित्व समझते हैं।

श्रीलप्रभुपाद—प्रचलित लोक-मत भी श्रौत-सिद्धान्त नहीं है। वह अज्ञानसे उत्पन्न है या अज्ञान द्वारा आच्छन्न है। 'निर्गुण' कहनेसे चिद्गुण रहित नहीं, परन्तु मायिक हेयगुण रहित निखिल सद्गुण या चिद्गुण का आधार है—यही समझना होगा।

मुदालियार—नाम-संकीर्त्तन ही यदि एकमात्र उपाय हो, तो श्रीमद्भगवद्गीतामें क्यों तीन प्रकारके उपायकी बात कही गई है?

श्रील प्रभुपाद— श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवद्भक्तिको ही निरपेक्ष उपाय एवं उपेय कहा गया है। कर्म-ज्ञान-योग आदि उपायों की निरपेक्षता गीता-शास्त्रमें नहीं कही गयी है। बद्ध-अवस्थामें माया-कवलित व्यक्तियोंकी कर्म-ज्ञान-योग आदि बद्धचेष्टाओंको भक्तिके उद्देश्यसे चालित कर चरममें निर्मल करनेके लिए ही पहले उन कर्म-ज्ञान-योगादिको गौण रूपसे स्वीकार किया गया है एवं उनका भक्तिसंग-पक्षत्व ही सर्वथा दिखलाया गया है। भक्तिके बिना ये सभी चेष्टाएँ कोई सार्थकता नहीं रखतीं। मैं समग्र गीतासे दिखलाऊँगा कि श्रीमद्गीतामें एकमात्र भगवद्भक्ति की मुख्यता अर्थात् भगवद्भक्तिको ही एक मात्र परम उपाय कहा गया है।

मुदालियार— भक्तिको श्रीमद्गीतामें केवल सर्वापेक्षा सहज उपाय कहा गया है।

श्रील प्रभुपाद— केवल सर्वापेक्षा नहीं—एकमात्र निरपेक्ष उपाय कहा गया है। गीतामें कर्मवादका खण्डन कर कहा गया है—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्रलोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ॥
न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्।
योजयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन् ॥
प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥
मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥
यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम् ॥

हे कौन्तेय! यज्ञ अर्थात् विष्णुके लिए

अर्पित कर्मको छोड़कर दूसरे कर्मोंसे मनुष्यों को कर्मबन्धन प्राप्त होता है। इसलिए विष्णु के उद्देश्यसे ही फलाकांक्षा रहित होकर कर्म का सम्यक् आचरण करो। अज्ञ, कर्ममें आसक्त व्यक्तियोंमें बुद्धि भेद उत्पादन न करो। बल्कि विद्वान् व्यक्तिका कर्त्तव्य है कि अवहित या ऐकान्तिक होकर सभी कर्मोंका सम्यक् आचरण करते हुए अज्ञ व्यक्तियोंका नियुक्त करें। प्राकृत गुणविशिष्ट व्यक्ति विषयमें आसक्त होते हैं। सर्वज्ञ व्यक्ति उन अज्ञ एवं मन्दमति व्यक्तियोंको विचलित नहीं करें।

आत्मनिष्ठ चित्त द्वारा समस्त कर्म मुझमें समर्पणपूर्वक सर्वत्र ममताशून्य एवं शोकरहित होकर युद्ध करो।

हे कौन्तेय ! तुम जो कुछ करो, जो कुछ द्रव्य भोजन करो, जो होम, दान अथवा जो कुछ तपस्या करो, वे सभी ही मुझमें समर्पण करो।

योगकी स्वतन्त्रता निरास या खण्डन कर भगवान्‌ने कहा है—

तपस्विभ्योऽधिकोयोगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन् मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यासि तच्छृणु॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

मेरे द्वारा वर्णित योगी तपस्वी व्यक्तियोंसे श्रेष्ठ है, ज्ञानियोंकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है, कर्मियोंकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है यही मेरा अभिमत है। अतएव हे अर्जुन ! तुम वैसे योगी बनो।

मद्गतचित्त होकर श्रद्धावान् बनकर जो मुझे भजन करते हैं, वे सभी योगियोंमें भी सर्वश्रेष्ठ हैं, यही मेरा अभिमत है।

हे पार्थ ! मुझमें आसक्त चित्त और मेरे शरणागत होकर भक्तियोग अनुष्ठान करते करते निःसंशय रूपसे सम्पूर्ण प्रकारसे मुझे जिस प्रकार जान सकोगे, वह श्रवण करो।

यह अलौकिकी गुणमयी मेरी बहिरंगा शक्ति माया निश्चय ही दुरतिक्रमणीया है। तथापि जो व्यक्ति एकमात्र मेरा ही आश्रय ग्रहण करते हैं, वे लोग इस दुरन्त या कष्टसे अतिक्रमणीय मायाको पार कर लेते हैं।

ज्ञानकी स्वतन्त्रताका खण्डन कर कहा गया है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

निर्विशेष ब्रह्म-स्वरूपमें आसक्त-चित्त व्यक्तियोंके लिए क्लेश ही अधिकतर होता है, क्योंकि वह निर्विशेष गति बड़े दुःख से ही देहधारी जीवों द्वारा प्राप्त की जाती है।

जो व्यक्ति ऐकान्तिक भक्तिके साथ मेरी ही सेवा करते हैं, वे इस गुणत्रयका अतिक्रम कर ब्रह्मानुभवके योग्य होते हैं। क्योंकि मैं ब्रह्म (निर्विशेष) की प्रतिष्ठा या आश्रय हूँ, अव्यय मोक्षका, सनातन धर्मका एवं ऐकान्तिक सुखका मैं ही एकमात्र आश्रय हूँ।

ब्रह्ममें अवस्थित अर्थात् ब्रह्म स्वरूप संप्राप्त प्रसन्नचित्त व्यक्ति किसी वस्तुके लिए शोक या आकांक्षा नहीं करते; वे सभी भूतों या प्राणियोंके प्रति समदर्शी होकर परा अर्थात् प्रेम-लक्षणयुक्त मेरी भक्ति प्राप्त करते हैं।

भगवद्भक्तिकी निरपेक्षता तथा गुह्यतमता एवं सर्व-साधनका खण्डन कर सब प्रकारसे आश्रय-योग्यता गीतामें स्पष्ट रूपसे बतलाई गई है—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढ़मिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
सततं कीर्त्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढ़व्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्॥
कथयंतश्च मां नित्यं तुष्यंति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

मेरा सबसे गुह्यतम एवं सर्वश्रेष्ठ उपदेश पुनः श्रवण करो। तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो अतएव तुम्हें हितोपदेश कर रहा हूँ। तुम मुझमें चित्त समर्पण करो, मेरे सेवापरायण बनो एवं मेरा ही यजन-परायण एवं नमस्कार-परायण बनो। ऐसा होने पर मुझे ही प्राप्त करोगे। यह तुम्हारे निकट सत्य ही प्रतिज्ञा कर कह रहा हूँ, क्योंकि तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो।

वर्णाश्रमादि सभी धर्मोंका स्वरूपसे परित्याग कर एकमात्र मेरा शरण ग्रहण करो। मैं तुम्हें सभी पापोंसे मुक्त करूँगा, तुम शोक मत करो।

वे लोग सर्वदा मेरा कीर्त्तन करते-करते एवं दृढ़व्रत होकर यत्न करते-करते एवं भक्ति के साथ प्रणाम करते-करते नित्य भावसे मेरा भजन करते हैं।

मुझमें समर्पित चित्त एवं समर्पित प्राण वे लोग परस्पर मेरे तत्वका विचार कर एवं कीर्त्तन करते-करते साधन अवस्थामें भक्ति सुख एवं साध्यावस्थामें रमण सुख प्राप्त करते हैं।

सततयुक्त प्रीतिपूर्वक भजनकारी उन्हें मैं उसी प्रकारका बुद्धियोग प्रदान करता हूँ,

जिसके द्वारा वे लोग मुझे प्राप्त कर लेते हैं।

मुदालियार—ऐसा होने पर क्या नाम-संकीर्तनमें ही कर्म-ज्ञान-योग-ध्यान-धारणा-धृति-संयम— सभी कुछ ही अनुस्युत हैं ?

श्रील प्रभुपाद— इन सभी कार्योंका अत्यन्त गौण या आनुषंगिक रूपसे नाम-संकीर्तनकारी व्यक्तियोंने पहले-पहले जन्मों में ही अनुष्ठान कर लिया है। जिनके जिह्वाग्रमें नाम अर्थात् नामाभास मात्रका उदय हुआ है, वे पूर्व-पूर्व जन्मोंमें बहुतसे यज्ञ, कर्म, बहुतसे दान, व्रत, तपस्या, बहुत ज्ञानाभ्यास, बहुतसे तीर्थोंमें स्नान, बहुत वेदाध्ययन, बहुत योगाभ्यास, बहुत संयम— समस्त साधना ही सम्पन्न कर लिये हैं।

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

जिनकी जिह्वामें नाम उच्चारित हो, उन्हें साधारण जाति-सामान्य नहीं जानना होगा। वे दीनताके साथ अपनेको नीच कुल में आविर्भूत कराकर नीचकुलजात व्यक्तियों को हरिनाम-ग्रहणकी योग्यता-भरोसा दिलाने के लिए उनकी महावदान्यता विस्तार कर सकते हैं। जिस किसी कुलमें आविर्भूत क्यों न हों, सभी महान् गुण उनके करतलगत हैं, उनकी सेवाके लिए अपेक्षायुक्त हैं।

विचारपति— आज हम आपकी वाणी का श्रवण कर कृतार्थ हुए।

कृष्णनामकी सर्वश्रेष्ठता

सदा सर्वत्रास्ते ननु विमलताद्यं तव पदं तथाप्येकं स्तोकं न हि भवतरोः पत्रमभिनत्।
क्षणं जिह्वाग्रस्थं तव तु भगवन्नाम निखिलं समूलं संसारं कर्षति कतरत् सेव्यमनयोः ?

श्रीश्रीधरस्वामीजी कहते हैं—हे भगवन् ! यद्यपि आपके श्रीअंगकी प्रभा-स्वरूप निर्मल निष्कल, निष्कारण, निराकार ब्रह्म सर्वत्र ही सदैवसे विराजमान है, तथापि उसने संसार रूपी वृक्षके एक छोटेसे पत्तेका भी छेदन नहीं किया। किन्तु हे प्रभो ! आपका मंगलमय नाम यदि क्षणभर भी अपनी अहैतुकी कृपासे जिह्वाके अग्रभागमें विराजमान हो गया तो नामग्राही जनके सम्पूर्ण संसार-वृक्षको समूल नष्ट कर देता है। अतएव हे प्रभो ! आप ही बतलाइए इन दोनोंमें से कौन सेवनीय हैं ?

(पद्यावलीसे)

प्रश्नोत्तर

(जीवका अधिकार एवं दुःसंग-वर्जन)

१— ईश्वर-प्रसाद लाभ करनेका कौन अधिकारी है ?

"विद्या एवं बुद्धि द्वारा जो उन्नति हो, वह पारमार्थिक उन्नति नहीं है। पारमार्थिक उन्नति केवल उत्तरोत्तर शुद्धभाव द्वारा अर्जनीय है। कोई निर्बोध मूर्ख भी ईश्वर प्रसाद अधिक परिमाणमें प्राप्त कर सकता है। कोई सर्वविज्ञानविद् पण्डित भी नास्तिकताका अवलम्बन कर पशुभावान्वित और ईश्वरप्रसाद विहीन हो सकता है। अतएव ईश्वर-प्रसाद प्राप्त करनेके लिए जाति, विद्या, धन, बल, रूप एवं जड़ीय कार्यमें निपुणता आदि समर्थ नहीं हैं। महापण्डित एवं महाधुरन्धर व्यक्ति एक ओर मदगर्वके कारण नरकके प्रति चला जा रहा है और नितान्त मूर्ख एवं बल-बुद्धिहीन कोई पुरुष परमेश्वरकी भक्ति प्राप्त कर परम शान्ति प्राप्त कर रहा है।"

—श्री म०शि० ५ म०१०

२— अभक्तके लिए भक्तचरित्र क्या आलोचनीय है ?

"जिनमें भक्तिके लिए अधिकार नहीं है, उनके लिए श्रीहरिदासठाकुर जैसे शुद्ध भक्तोंका चरित्र आलोचना करना विडम्बना मात्र है। अन्ध व्यक्तिका पुस्तक-पाठ एवं मूक व्यक्तिका गान-श्रवणकी तरह अभक्तोंके लिए भक्त-चरित्रका अनुशीलन विफलता मात्र है।"

—'समालोचना', ससंगिनी स० तो० ८।४

३— किस प्रकारके ब्राह्मणके लिए किस प्रकारके वेदमें अधिकार है ?

"व्यवहारिक ब्राह्मणोंके लिए कर्मादि प्रतिपादक वेदोंमें अधिकार है एवं पारमार्थिक ब्राह्मणोंके लिए तत्त्व-प्रतिपादक वेदोंमें ही अधिकार है।"

जै० ध० ६वाँ अ०

४— परमार्थ चेष्टा उदित न होने पर जीवोंके लिए कौन-सी चेष्टा अवलम्बन करना आवश्यक है ?

"जब तक जीवोंकी परमार्थ-चेष्टा नहीं होती, तब तक त्रिवर्ग-चेष्टाको छोड़कर धर्म-जीवनके लिए दूसरा उपाय क्या है ?"

—'संगत्याग' स० तो० ११।११

५— स्त्री-जातिके लिए साधारण रूपसे किस आश्रममें अधिकार है ?

"स्त्रियोंके लिए गृहस्थाश्रम एवं स्थल-विशेषमें वानप्रस्थ आश्रमको छोड़कर और कोई आश्रम स्वीकार करने योग्य नहीं है। कोई असाधारण शक्तिसम्पन्ना स्त्री विद्या,

धर्म एवं सामर्थ्य प्राप्त करते हुए यदि ब्रह्मचर्य या संन्यासाश्रम ग्रहण कर सफलता प्राप्त करे या प्राप्त कर लेते हैं; किन्तु साधारण रूपसे वह कोमलश्रद्ध, कोमल-शरीर, कोमल-बुद्धि, स्त्रियोंके लिए विधि नहीं है।"

चै० शि० २।४

६— साधक स्त्रीपुरुषोंके भजनस्थान सम्बन्धमें कैसी व्यवस्था निरापद या सुरक्षित है ?

"बाहरी देहगत सम्बन्धसे स्त्रीपुरुष सर्वदा ही पृथक् रहेंगे। स्त्रियोंका भजन-स्थान अलग रहे एवं पुरुषोंका भजन-स्थान अलग रहे। क्योंकि एकत्र रहने पर रसतत्त्व में प्रविष्ट व्यक्तियोंमें क्रमशः जड़ीय स्त्री-पुरुषगत विरसता आकर उपस्थित होती है। तब शास्त्रका दूसरा अर्थ कर अपने चरित्र को बचानेकी चेष्टामें उत्तम साधुओंकी निन्दा आकर उपस्थित होती है।"

'समालोचना', स०तो० १०।६

७— हजारों साधन करनेपर भी फल-लाभ क्यों नहीं होता ?

"जो लोग असत्संग करते हैं, वे हजारों साधन करनेपर भी फल प्राप्त नहीं कर सकते।"

—'असत्संग-परित्याग', स०तो० ४।५

८— कपटियोंका चरित्र कैसा है ? साधु लोग अपने एवं दूसरोंके मंगलके लिए अपना चरित्र सबके सामने ज्ञापन करते हैं क्या ?

"वैष्णव-संगालाप विमुख व्यक्तियोंकी विष्णुभक्ति-दूषित अन्तरंग क्रिया बाहरी भूषण मात्र है। सत्संग-स्पृहाराहित्य एवं श्रीहीनता ही लक्षण हैं। इस लक्षण द्वारा केवल-वेशधारी की परीक्षा करनी पड़ती है। साधारण व्यक्ति समझते हैं कि इन सभी व्यक्तियोंको लेकर वैष्णव-सेवा करना चाहिए। किन्तु ऐसा समझना केवल भ्रम है। क्योंकि इनको छोड़कर भी तो सद्वैष्णव लोग हैं, उनके सहित संग एवं उनकी सेवा करनेका यत्न करेंगे। जो व्यक्ति चतुर हैं, गम्भीर एवं शुद्धभक्त हैं, वे लोग उनकी कपट प्रीतिसे केवल दूर ही नहीं रहते, बल्कि उनकी कपटताको जगतमें प्रकाशित कर शुद्धभक्ति की स्थापना करते हैं। उन सभी कपटता-तिरस्कारकारी शुद्ध-भक्तोंका संग कर प्रेमारम्भ करना ही कर्त्तव्य है। यही जानना होगा।"

अ०वि०भा०टी०

९— कृष्णाभक्तका संग सब प्रकारसे क्यों वर्जनीय है ?

"कर्मवादी पुरुष भी भक्त नहीं हैं। अतएव वे भी अभक्त हैं। कृष्ण प्रसाद प्राप्त करनेके लिए यदि कोई व्यक्ति कर्म करे, तो उस कर्मका नाम ही 'भक्ति' है। जो कर्म प्राकृत फल या बहिर्मुख ज्ञान प्रदान करे, वह कर्म ही भगवद्विमुख है। कर्मी व्यक्ति कृष्ण-प्रसादका अनुसंधान नहीं करते। यद्यपि कृष्णका सम्मान करते हैं, तथापि उनका मूल ही यह है कि किसी प्रकारका प्राकृत सुख प्राप्त हो। योगी लोग किसी स्थलमें ज्ञानका

फल कैवल्य-मोक्ष एवं किसी स्थलमें कर्मका फल विभूति (ऐश्वर्य) का अनुसंधान करते रहते हैं। इसलिए उन्हें अभक्त ही कहा जाता है। बहुतसे देवताओंके पूजकोंमें अनन्य शरणागति न होनेके कारण उन्हें अभक्त ही कहा जाता है। जो व्यक्ति केवल शुष्क-न्यायादि विचारमें आसक्त हैं, वे भी भगवद् बहिर्मुख हैं। जो व्यक्ति इस प्रकार सिद्धांत करते हैं कि भगवान् एक काल्पनिक तत्त्व मात्र हैं, उन लोगोंकी तो बात ही नहीं है। जो व्यक्ति विषयमें आसक्त होकर भगवान् की चिन्ता करनेका अवसर नहीं पाते, वे भी अभक्तोंमें गिने जाते हैं। इन सभी अभक्तोंका संग करने पर अत्यन्त अल्प समयमें ही बुद्धि-नाश होता है एवं उनकी जैसी प्रवृत्ति है, वैसी प्रवृत्ति आकर हृदय में आसन ग्रहण करती है। यदि शुद्धभक्ति प्राप्त करने की किसी व्यक्तिमें आकांक्षा है, तो वे विशेष सतर्कताके साथ अभक्त-संग परित्याग करेंगे।"

—'संगत्याग', स०तो० ११।११

१०—दांभिक ज्ञानी क्या कृष्णभक्तिको स्वीकार करते हैं?

"ज्ञानवादी पुरुष कदापि भगवान्के अनुगत नहीं हैं। वे सोचते हैं कि 'मैं भी ज्ञान-बलसे भगवान्के समान बनूँगा। ज्ञान ही सर्वोत्तम वस्तु है। ज्ञानको जो प्राप्त करता है, उसे भगवान् और अपने अधीन रख नहीं पाते। ज्ञान बलसे ही भगवान्की ब्रह्मता, एवं ज्ञानबलसे मैं भी ब्रह्म हो जाऊँगा। अतएव ज्ञानवादियोंकी सभी ही चेष्टाएँ भगवान्से स्वाधीन होनेके लिए हैं। ज्ञानसे जो सायुज्य-मुक्ति होती है, उसमें जीवके ऊपर और भगवान्का विक्रम नहीं रहता—यही तो ब्रह्म ज्ञानियोंकी चेष्टा है। आत्म-ज्ञानी एवं प्राकृत ज्ञानी व्यक्ति ही भगवान् की कृपाकी अपेक्षा नहीं करते। वे लोग ज्ञान एवं युक्तिके बलसे सब कुछ पानेकी चेष्टा करते हैं। ईश-प्रसादके लिए विशेष यत्न नहीं करते। अतएव ज्ञानीमात्र ही अभक्त हैं। यद्यपि कोई ज्ञानी साधनकालमें भक्तिको स्वीकार करते हैं, तथापि वे सिद्धिकालमें भक्तिका विसर्जन कर देते हैं।"

—'संगत्याग', स० तो० ११।११

११— किस प्रकारके गुरुका परित्याग करना चाहिए?

"गुरु-वरण कालमें गुरुको शब्दोक्त-तत्त्व में एवं परतत्त्वमें पारंगत देखकर परीक्षा की जाती है। वैसे गुरु अवश्य सर्वप्रकारके तत्त्वोपदेशमें समर्थ हैं। दीक्षागुरु अपरित्याज्य होने पर भी वे दो कारणोंसे परित्याग किये जा सकते हैं। एक कारण तो यह है कि शिष्यने जब गुरुवरण किया था, तब यदि तत्त्वज्ञ एवं वैष्णवगुरुकी परीक्षा न की हो, ऐसा होने पर कार्यकालमें उस गुरुके द्वारा कोई कार्य नहीं होते देखकर उन्हें परित्याग करना पड़ता है। शास्त्रोंमें इस विषयपर बहुतसे प्रमाण हैं। दूसरा कारण यह है कि गुरु-वरण करते समय गुरुदेव वैष्णव एवं तत्त्वज्ञ थे, किन्तु संगदोषसे पश्चात् मायावादी या वैष्णव-द्वेषी हो गये— ऐसे गुरुका परित्याग

करना ही कर्त्तव्य है।"

जै० ध० २०वाँ अ०

१२— दुष्ट-गुरु क्या वर्जन करने योग्य नहीं है ?

"जो व्यक्ति स्वयं रागमार्ग अवगत नहीं हैं, तथापि दूसरोंको उसका उपदेश करते हैं, या रागमार्ग अवगत होकर भी शिष्यका अधिकार विचार न कर कोई उपदेश करते हैं, वे दुष्ट-गुरु हैं। उन्हें अवश्य ही वर्जन करना चाहिए।"

—कृ० सं० ८।१४

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद
श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

❀ ❀

श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमा एवं श्रीगौर-जन्मोत्सव

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत २९ फाल्गुन, १३ मार्च, मङ्गलवारसे लेकर ५ चैत्र, १९ मार्च, सोमवार तक श्रीवृन्दावनाभिन्न श्रीनवद्वीप-धामकी परिक्रमा एवं स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनाभिन्न शचीनन्दन श्रीगौरसुन्दर श्रीमन्महाप्रभुकी निखिल भुवन-कल्याणमयी आविर्भाव-तिथि के महामहोत्सव श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूलमठ श्रीदेवानंद गौड़ीय मठ, नवद्वीपसे विराट् समारोह एवं धूमधामके साथ सम्पन्न हुए।

इस वर्ष अन्यान्य वर्षोंकी अपेक्षा परिक्रमा-यात्री अधिक थे। लगभग ३००० श्रद्धालु सज्जनोंने श्रीधामकी परिक्रमा कर विशेष भक्त्युन्मुखी सुकृति अर्जन करते हुए स्वयं भगवान् श्रीगौरांगदेवकी अहैतुकी कृपा के पात्र हुए हैं। समितिके वर्त्तमान सभापति एवं आचार्य पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराजकी अध्यक्षता एवं समितिके वर्त्तमान उप-सभापति एवं संयुक्त-सम्पादक पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्ति वेदांत नारायण महाराजकी कुशल परिचालना में समितिके सभी गृहस्थ-भक्त, ब्रह्मचारीवर्ग एवं त्रिदण्डी संन्यासियोंने विशेष उत्साह एवं कुशलतासे सभी सेवा कार्य करते हुए इस महामहोत्सवमें अभूतपूर्व योगदान दिया है। विभिन्न दिवसोंमें विभिन्न वक्ताओंने अपनी ओजस्वनी वाणी एवं हरिकथा-सुधा प्रवाह से श्रोताओं एवं उपस्थित श्रद्धालु सज्जनोंको आप्यायित एवं परमानन्दित किया। महोत्सव के सभी कार्य बिना किसी बाधाके अनायास ही सुशृङ्खल रूपसे सम्पन्न हुए। इस महामहोत्सवमें भाग लेनेवाले श्रद्धालु सज्जनवर्ग, अनुमोदनकारी एवं विभिन्न प्रकार से सहायकारी सज्जनगण समितिके विशेष धन्यवाद एवं सम्मानके पात्र हैं।

—निजस्व संवाददाता